International Journal of Advanced Multidisciplinary Research in Social Sciences and Humanities
ISSN: 0000-0000
A Peer-Reviewed, Open Access, Multidisciplinary Academic Journal
https://ijamrssh.org/
Volume-1, Issue-1 2026, Page No. 26-29 Received: 04-07-2026, Accepted: 16-07-2026; Published: 25-07-2026

ईको फेमिनिज्म (पारिस्थितिकीय नारीवाद): साहित्य और समाज

देवाशीष

हिंदी विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय,अलीगढ़

Abstract

हिंदी साहित्य सदियों से चली आ रही साहित्यिक कार्यों की एक समृद्ध परंपरा है, जो समाज, संस्कृति और मनुष्य के बीच एक गहरा संबंध स्थापित करती है। यह शोध आलेख चयनित हिंदी उपन्यासों में उपस्थित eco feminism यानी कि पर्यावरण और स्त्री के मध्य अंतरसंबंध और उससे जुड़ी समस्या का विश्लेषण प्रस्तुत करता है। भारत में मौजूद आधुनिक सभ्यता; जो आजकल पूंजीवादी और सामंतवादी व्यवस्था के गठजोड़ का मिला-जुला स्वरुप है, उसके आगमन ने मनुष्य को आधुनिक सुख-सुविधा के साधन तो उपलब्ध कराए; मगर उसने उसे प्रकृति से भी दूर कर दिया है। परिणामस्वरूप उसकी लालसापूर्ण प्रवृत्ति ने उसे उसकी मानवीय नैतिकता से भी दूर कर दिया है। वर्तमान पूंजीवादी दौर में जहाँ अर्थ मनुष्य के आपसी रिश्तों के साथ-साथ प्राकृतिक घटकों के मूल्य निर्धारण का पैमाना बन गया हो; वहाँ उसके संवेदना पक्ष का भी ह्रास होता जा रहा है। आज मनुष्य का मनुष्य से अलगाव, जिससे वह अपनी मनुष्यता खोता जा रहा है और आदिम अमानुषिक भाव की ओर पुनः बढ़ रहा है, ऐसे समय में साहित्य का दायित्व और भी महत्वपूर्ण हो जाता है। वर्तमान में प्राकृतिक संसाधनों का अंधाधुंध दोहन बढ़ता जा रहा है, मगर उससे उत्पादित वस्तुओं का इस्तेमाल कौन कर रहा है? आज जितनी आबादी है उससे अधिक संसाधन उपलब्ध हैं, परंतु उनका वितरण समान रूप से नहीं हो रहा है। आज भी स्त्री, दलित, आदिवासियों को उनके मूलभूत अधिकार प्राप्त नहीं है तो इसमें किसी खास वर्ग, लिंग, जाति या समुदाय के आधिपत्य का ही प्रभाव है, जो सदियों चले आ रहे अपने विशेषाधिकारों को नहीं त्यागना चाहता है। आदिवासी समुदाय को उनकी ही जमीन से निष्कासित कर उनकी जमीन का इस्तेमाल किसी धनाड्य वर्ग की आधारभूत जरूरतों से लेकर उनकी शानो-शौकत को पूरा करने के लिए किया जा रहा है। चयनित उपन्यासों में उस तथाकथित मुख्यधारा का प्रतिनिधित्व करने वाली सरकार जो पूंजीवादी संस्कृति के साथ मिलकर इन हाशिये पर स्थित आदिवासियों को जबरन विस्थापित करने पर मजबूर करती है; उनसे आदिवासी वर्ग अपना प्रतिरोध व्यक्त करता है और एक सामाजिक आंदोलन छेड़ देता है, जिसमें जल-जंगल-जमीन बचाओ की अनुगूँज सुनाई देती है। इन आंदोलनों में स्त्रियों का प्रमुख योगदान रहता है। इस आलेख में वर्तमान सदी के कुछ चयनित हिंदी उपन्यासों में अभिव्यक्त आदिवासी स्त्रियों की स्थिति, जीवन के दैनिक संघर्षों के साथ ही उनके सशक्त प्रतिरोध और अभिव्यक्ति को वर्णित किया गया है। इसलिए हम इसी संदर्भ में उपन्यासों के माध्यम से स्त्री और पर्यावरणीय संबंधों को eco feminism के नजरिए से देखने का प्रयत्न करेंगे।

Keywords : ईको फेमिनिज्म, स्त्री, पर्यावरण, प्रकृति, उपन्यास

रामचन्द्र शुक्ल 'हिंदी साहित्य का इतिहास' में लिखते हैं, "जब कि प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिंब होता है तब यह निश्चित है कि जनता की चित्तवृत्ति के परिवर्तन के साथ साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है। आदि से अंत तक इन्हीं चित्तवृत्तियों की परंपरा को परखते हुए साहित्य-परंपरा के साथ उन का सामंजस्य दिखाना ही साहित्य का इतिहास कहलाता है।"**1** प्रेमचंद साहित्य को राजनीति के आगे मशाल लेकर चलने वाले स्रोत के रूप में देखते हैं। कई बार साहित्य भविष्य द्रष्टा के रूप में भी दिखाई पड़ता है। इस तरह से साहित्य

वह कोरा इतिहास नहीं है, जिनमें केवल तथ्यों और आंकड़ों की भरमार हो बल्कि बालकृष्ण भट्ट के शब्दों में कहें तो यह 'जनसमूह के हृदय का विकास है।' साहित्य मनुष्य के विकास के इतिहास में आदिकाल से चले आ रहे उन अमानवीय प्रवृत्तियों को दर्ज कर उसे अपने कृत्यों पर विचार करने के लिए विवश करता है और उससे मानवीय और नैतिक बदलाव की आकांक्षा रखता है। ऐसे में उत्तर आधुनिक दौर से उपजा स्त्री, दलित, आदिवासी और भी अन्य विमर्श-लेखन साहित्य के स्वरूप को विकसित करने में काफी मदद की है। नारीवाद से ही निकला हुआ 'ईको फेमिनिज्म' भी समानता और न्याय की जड़ों से निकला हुआ एक विचार है, जहाँ उन सवालों पर ध्यान केंद्रित किया गया है जिनके माध्यम से प्रकृति और स्त्री दोनों की वर्तमान में हाशिये की स्थिति और समस्या की जड़ों को तलाशने की कोशिश की गई है। यह पुरुष की अपने से इतर किसी स्वतंत्र जीव पर वर्चस्व और अधिकार की ही मानसिकता है, जिसे वह किसी वस्तु की तरह समझता हो और वह उसके उपभोग के लिए बनी हो। ऐसे कई कारण हैं, जिनकी वजह से वह उन स्वतंत्र इकाईयों को हाशिये पर धकेलते हुए आगे बढ़ता गया और उन्हें भूल गया, जिनसे वह पोषित होता हुआ आगे बढ़ा। प्रकृति ने आदिम समय से ही सभी जीवों को समान रूप से जीवित रहने का वातावरण एवं अधिकार दिया, जिसमें स्त्री, जिसका अपना एक स्वतंत्र अस्तित्व होने बावजूद, उसने प्राचीनकाल से पुरुष के समान ही श्रम करते हुए विकास की सीढ़ियाँ चढ़ीं, मगर आज के समय भी हम देखते हैं कि आज वही स्त्री हाशिये पर चली गई और पुरुष हर जगह अपना वर्चस्व स्थापित करता जा रहा है। उसने स्त्री को ही नहीं, बल्कि प्रकृति को भी अपने नियंत्रण में ले लिया है। बाढ़, सूखा, भूकंप आदि के रूप में आज उसी का भयानक परिणाम देखने को मिल रहा है। प्रकृति अपना रौद्र रूप लेकर पृथ्वी पर उपस्थित जीवन की सभी इकाईयों को समाप्त करने पर तुली हुई है, उनके भी जिनका इनमें कोई दोष नहीं है।

'Eco feminism', इको और फेमिनिज्म शब्द को जोड़कर बना है जो इकोलॉजी और फेमिनिज्म के आपसी संबंध को दर्शाता है। "इकोलॉजी का अर्थ है घर जो Oikos नामक ग्रीक शब्द से निसृत है।"१२ eco feminism Vanja उन्नीसवीं सदी की विख्यात पर्यावरणविद के रूप में 'एलन स्वाल रिचर्ड' का नाम महत्वपूर्ण रूप से लिया जाता है क्योंकि उन्होंने इकोलॉजी और 'Human Ecology' जैसे शब्दों का सर्वप्रथम उपयोग किया और उसकी परिभाषा गढ़ी। इकोलॉजी के अर्थ को बताते हुए वह कहती हैं कि मनुष्य, जीव जंतु जैसे पृथ्वी पर उपस्थित सभी पदार्थ एक दूसरे से संबद्ध हैं और एक दूसरे से प्रतिक्रिया करते हैं । बाद में 'स्वाल' से प्रेरणा लेते हुए उनके परवर्ती पारिस्थितिक और स्त्री चिंतकों सिमोन जैसी लेखिकाओं ने स्त्री और प्रकृति के संबंध को और स्पष्टता से व्याख्यायित किया।

इको फेमिनिज्म स्त्री और प्रकृति के शोषण को एक ही ज़मीन पर खड़ा देखता है। जिस तरह प्रकृति जीवन के सृजन और पालन-पोषण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है, उसी तरह एक स्त्री का बच्चों के पालन-पोषण के क्रम में जो मानसिक संरचना बनती है, वह स्थिति स्त्री और प्रकृति को एक करती है। यह बात पुरुष को भी भली-भांति मालूम थी इसलिए वह स्त्री से डरने लगा था; जैसे वह प्रकृति के भयंकर विनाशकारी रूप से डरता था। जैसे प्रकृति जीवनदायिनी थी वैसे ही स्त्री भी। 'दि सेकंड सेक्स' में 'सिमोन' कहती हैं- "स्त्री कबीले की जीवनदायिनी शक्ति बनी। परिवार में उसे प्राथमिकता प्राप्त थी। प्रायः वंश का नाम मां के नाम से चलता था। सामूहिक संपत्ति का स्वामित्व भी औरत के पास था। वह अपने बच्चों के माध्यम से इस संपत्ति की रक्षा करती। औरत की तुलना धरती से की गई। वह धरती की तरह उर्वरा थी, जीवन धात्री भी।"2

पुरुष के उस अप्रत्याशित भय ने उसे धरती का सबसे खतरनाक जीव बनाया। भय से संचालित होकर ही उसने प्रकृति से लेकर स्त्री को अपने नियंत्रण में करना आरंभ किया- "स्त्री में प्रजनन की क्षमता होते हुए भी पुरुष उसका स्वामी था, जैसे वह जमीन का स्वामी था। स्त्री की नियति थी पुरुष की अधीनता। प्रकृति की भांति उसका भी शोषण पुरुष ने किया। जिस सम्मान को वह भोगती थी, वह पुरुष का दिया हुआ था। पुरुष के हाथ प्रार्थना में देवी के सामने झुके, लेकिन उस देवी का निर्माता वह स्वयं था। वह यदि स्त्री को देवी के पद पर आसीन कर उसकी स्तुति कर सकता था, तो देवी को छिन्न-भिन्न करने की ताकत भी उसके पास थी।"3

स्त्री और प्रकृति दोनों के शोषण की जड़ में जो मानसिकता काम करती है, वह पितृसत्तात्मक सोच है। इसमें पुरुष को प्रधान रूप में रखते हुए उसे प्रमुख और दूसरों को अन्य की श्रेणी में रखने की भावना मौजूद है। पारिस्थितिकीय नारीवाद ने शोषण की जड़ों को अलग-अलग करके देखने की सोच को नकारते हुए यह कहा कि उत्पीड़न के सभी रूप एक दूसरे से जुड़े होते हैं। उन्हें अलग-अलग करके नहीं बल्कि संपूर्णता में देखने से ही समस्या की जड़ तक पहुँच सकते हैं। पारिस्थितिक नारीवाद का मानना है कि "पितृसत्ता समाज चार मुख्य एवं परस्पर संबद्ध खंभों पर अवस्थित है, वे हैं - लिंगवाद, नस्लवाद, वर्गशोषण और पर्यावरण का नाश।" 12

मानव सभ्यता के विकास का क्रमागत अध्ययन इतिहास के माध्यम से संभव हुआ है। इतिहास मनुष्य द्वारा अपनी सुविधा के लिए किए गए नए-नए आविष्कार तथा संस्कृति, मूल्य और सिद्धांतों के बनने और विकसित होने की प्रक्रिया को दर्ज करता आ रहा है। ऐसा माना जाता रहा है कि कुछ आदिम कबीलाई समाज मातृसत्तात्मक समाज रहा, जिसमें स्त्रियों को विशेष दर्जा दिया जाता था। पुरुष उन्हें पूजनीय मानता, क्योंकि वह जन्मदायिनी और पोषक थी; बिल्कुल प्रकृति की तरह। प्रकृति स्त्री की भांति ही सभी जीवों के पालन-पोषण में महती भूमिका निभाती थी। पुरुष इस बात को जानता था, वह उसकी अनेक प्राकृतिक आपदाओं से परिचित होते हुए उससे डरा हुआ रहता था। क्योंकि प्राकृतिक आपदाओं के साथ ही उसे अपने से शक्तिशाली

जंगली जानवरों से भी खुद को बचाए रखने की आवश्यकता थी, जिसके कारण वह एक गुफा से दूसरी गुफा में छिपा-छिपा रहता था।

Eco feminism की तीन दृष्टियाँ हैं- पहली है, आध्यात्मिक दृष्टि। चूंकि eco feminism पश्चिमी दृष्टिकोण है, इसलिए इसका आध्यात्मिक दृष्टिकोण भी पश्चिमी विचार से प्रभावित है। इसमें पृथ्वी को पवित्र जीव माना गया है और इसे देवता भी कहा गया है। चूंकि पृथ्वी जीवित इकाई है तो उसे जैव जगत के अंतर्गत ही मान लिया गया एवं संसार और मनुष्य को एक ही धरातल पर स्थित माना गया । जो संसार में है वही हमारे अंदर भी विद्यमान है और अक्सर मानव मन और प्रकृति का आपसी संतुलन बिगड़ने पर विनाश की स्थिति उत्पन्न होने लगती है। अनामिका अपने उपन्यास में इस संबंध को बहुत उचित एवं सटीक अर्थ में व्याख्यायित करती हैं- "सृष्टि की कुछ मूल ध्वनियाँ हैं, कुछ मूल स्पन्दनों में कीलित ध्वनियाँ जो सृष्टि के आरम्भ में एक विशेष भाव के संग फूटीं! गहन ध्यान में उनसे तादात्म्य उसी विशेष भाव में हमें स्थित कर देता है। हमारे रोम-कूप खुल जाते हैं तो वह तल्लीनता घटती है जिसमें हम जो चाहें, भीतर उतार सकते हैं। सरस्वती सारे सात्विक भावों का उदयाचल हैं। ब्रह्ममुहूर्त्त की वेला में पूरी सृष्टि उसी भाव में स्थित होती है। और गहन ध्यान में उतरो तो मन भी उसी भाव में स्थित हो जाता है! इतना गहरा तादात्म्य है मन का और चित्त का इस पर्यावरण से!"6

अनामिका अपने आदि-चिंतकों के हवाले से उनकी बातों को समर्थन देती हैं- "मनुष्य के भीतर का जल-तत्व विरल हो तो उसके परिवेश में भी सुखाड़ आ जाता है, हमारे आदि-चिंतकों ने पिंड और ब्रह्मांड के बीच ऐसा अन्योन्याश्रय संबंध बताया है!"7 (यत् पिण्डे तत् ब्रह्माण्डे)

दूसरी दृष्टि नारीवादी दृष्टि है, जो वर्तमान की वर्चस्ववादी भावना को चुनौती देने का प्रयास करती है। उसके अनुसार दुनिया में उन्हीं को न्याय मिलता है जिनके पास सत्ता है, शक्ति है या विशेषाधिकार है। जबकि नारीवादी दृष्टि सभी के लिए न्याय की वकालत करता है। खासकर स्त्री के लिए, जोकि संसार की आधी आबादी का हिस्सा होने बावजूद आज भी पितृसत्ता के शोषण का शिकार बनाई जा रही है। इसमें स्त्री के न्यायपूर्ण और बेहतर ज़िंदगी की मांग सम्मिलित है।

यह नारीवादी दृष्टि अतीत में अन्याय के आधार पर पुरुष और स्त्री में घटित विभाजन की ओर ध्यान आकृष्ट करती है। साथ ही वह प्रकृति और पुरुष के भी अविभाजित रूप को उल्लेखित करती है। किन्तु कालांतर में पुरुष ने विकास की सीढ़ियाँ चढ़ते हुए प्रकृति और स्त्री को नज़र अंदाज करते हुए, खुद को अजेय बनाने के क्रम में जो दीवारें खड़ी कीं, उनसे प्रकृति का विनाश शुरू हुआ तो स्त्री की भी दयनीय दशा होने लगी। 'अल्पना मिश्र' की पुस्तक 'अस्थि फूल' में झारखंड की बिटिया पलाश को गरीबी और मजबूरी के अभाव में अपने माँ बाप द्वारा ही बेच दिया जाता है। उसके बाद उसको किस कदर रौंदा जाता है, पलाश स्वयं अपने गाँव और शहर के जीवन की दशा का वर्णन संध्या से करते हुए रो पड़ती है- "दीदी जी, लगता है वह कोई दूसरा जीवन था, जी कर हम इस नरक में झोंक दिए गए। वहाँ औरत प्रकृति थी, इंसान थी, नदी, आकाश और पेड़-पौधों की तरह पवित्र थी। यहाँ औरत, औरत नहीं है, देह है, सामान है, भोग है।"8 इस तरह औद्योगिक पूंजीवाद से उत्पन्न शहरीकरण ने स्त्रियों को आंशिक आज़ादी दी ताकि वह पूंजी और बाजार के लिए सस्ती श्रम, उपभोग और मनोरंजन के साधन में उपलब्ध हो सकें। किन्तु उन्हें आज भी द्वितीय श्रेणी में रखकर देखा जाता है। जैसाकि 'सिमोन' अपनी पुस्तक 'दि सेकंड सेक्स'में कहती हैं- "औद्योगिक क्रांति के परिणामस्वरूप औरत को उत्पादक श्रम के क्षेत्र में प्रवेश मिला और यहीं से औरत की स्वाधीनता के दावे को आर्थिक आधार मिला, साथ ही विरोधी खेमे और अधिक आक्रामक हो गए।"9

'राधा कुमार' ने अपनी पुस्तक 'स्त्री संघर्ष का इतिहास' में इस प्रकार दर्ज किया है- **"मानव इतिहास का पहला द्वैत था लैंगिक आधार पर श्रम का विभाजन जो स्त्रियों की पुनरुत्पादक योग्यता के कारण उभरा। स्त्रियों के जीवन का बड़ा हिस्सा शिशु जन्म, शिशुओं की देखभाल में बीत जाता है जिससे उनकी गतिशीलता कम हो जाती है और वे गृहिणी मात्र बनकर रह जाती हैं। जैसे-जैसे समाज पहले कृषि, फिर व्यापार और तत्पश्चात उद्योगोन्मुख हुआ, महिलाओं का दायित्व प्रसव, शिशु देखभाल इत्यादि तक सीमित कर दिया गया। स्त्री शरीर पर नियंत्रण का विनियोजन पूंजीवाद के अंतर्गत हमारे उत्पीड़न का सर्वाधिक उल्लेखनीय नमूना है।**"10

आज समाज की स्त्रियों को उपभोग के साधन के रूप में देखा जाने लगा है। भुखमरी, शिक्षा और रोजगार से वंचित समाज में स्त्रियों की स्थिति और बदतर हो जाती है, जिसका फायदा उठाकर खदान के ठेकेदारों द्वारा उनकी स्त्रियों के साथ बदसलूकी की घटनाएं अक्सर देखने को मिलती रहती हैं। उनके हाशियेकरण की स्थिति आधुनिक समय में खासकर, बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में अधिक तेजी से हुई, जब वैश्वीकरण, उदारीकरण की नीतियाँ पूरे विश्व में अपने पाँव पसारने लगीं। उदारीकरण की नीतियों से मुक्त व्यापार एवं मुक्त बाजार की व्यवस्था को समर्थन प्राप्त हुआ, जिसके चलते विदेशी कंपनियों ने आदिवासी इलाकों को निशाना बनाया क्योंकि उनके निवास स्थान की जमीनों पर उन्हें खनिज पदार्थ मिलते थे, इसलिए आदिवासियों को उनसे बिना अनुमति के उन्हें वहाँ से हटा दिया जाता था। इस तरह उन्हें अपनी जमीन से बेदखल कर उन्हें मामूली मुआवजा देकर निर्वासित जीवन जीने को मजबूर कर दिया जाता और खनन से मिले पदार्थों का प्रयोग तथाकथित मुख्य समाज के विकास हेतु किया जाता।

ऐसा माना जाता है कि आदिवासी समाज मूलतः समतामूलक समाज है, जहाँ स्त्रियों और पुरुषों को स्वतंत्रता, समानता एवं सम्मान बराबर मिलता है। आदिवासी स्त्रियाँ सशक्त हैं। वह स्वयं और परिवार के लिए निर्णय लेती हुई

नज़र आती हैं। कहीं-कहीं तो वह पुरुषों से ज्यादा सशक्त नज़र आती हैं। 'रणेन्द्र' कृत 'ग्लोबल गाँव के देवता' के मास्टर साहब पाथरपाट स्कूल के कैम्पस में घुसते ही हाट जाती हुई स्त्री की मूर्ति पर नज़र पड़ जाती है। "पीठ पर बंधा हुआ बच्चा, एक हाथ में मुर्गी, माथे पर लकड़ी का छोटा सा गट्ठर। एकदम सजीव मनोहारी मूर्ति।"[11] जहाँ पुरुष सिर्फ खेती या मजदूरी करता दिखता है, वहीं इस समाज की स्त्रियाँ घर के कामों से लेकर बाहर पुरुषों के साथ खेतों एवं खदानों में काम करते हुए भी दिख जाती हैं। यहाँ आदिवासी समाज की स्त्री की मजबूरी भी है क्योंकि अकेले मरद की मजदूरी से परिवार का पेट भरे तब तो? मगर अधुनातन समय में बढ़ते औद्योगिक, खनिज क्षेत्र इन आदिवासी स्त्रियों के लिए विस्थापन और पलायन के अधिक कारण बन रहे हैं। जल-जंगल-जमीन से उजड़ने एवं जगह-जगह कारखाने लगने से सर्वाधिक असुरक्षा बोध इन्हें हुआ है। मुख्यधारा समाज द्वारा शिक्षा एवं स्वास्थ्य के प्रचार-प्रसार एवं आपसी संपर्क से इनके समाज में भी पितृसत्तात्मक व्यवस्था फैली, जिसकी शिकार आदिवासी स्त्रियाँ हुईं।

आदिवासी समाज आज गरीबी और भूख से टूट चुका है। इसकी सामाजिक व्यवस्था भी निरंतर दयनीय होती जा रही है। "पेट भरने के लिए जिसके घर में एक समय का भोजन न हो वहाँ पर अपने बेटों को गाँव छोड़ने एवं बेटियों को डेरा में काम करने के बहाने रखनी बनने से कौन रोक सकता है?"[12] सभ्यता हो या आधुनिक; इन सारी व्यवस्थाओं के बीच स्त्री सबसे ज्यादा पिसती हुई दिखती है। आदिवासी स्त्रियों के साथ तो शोषण के परत-दर-परत जुडते हुए नज़र आते हैं। इनकी व्यथा को समझना इस पुरुषसत्तात्मक समाज के लिए मुश्किल है। स्त्री को स्वयं की स्वतंत्रता, अधिकार के लिए लगातार एवं लंबी लड़ाई लड़नी है। वह सिर्फ स्वयं के लिए ही नहीं अपितु प्रकृति को बचाने के लिए भी लड़ रही हैं। "धरती भी स्त्री, प्रकृति भी स्त्री, सरना माई भी स्त्री और उसके लिए लड़ाई लड़ती सत्यभामा, इरोम शर्मिला, सी. के. जानू , सुरेखा दलबी और यहाँ पाट में बुधनी दी और सहिया ललिता भी स्त्री। शायद स्त्री ही स्त्री की व्यथा समझती है।"[13] उपन्यास में खनन कंपनियां जिन्हें लीज की जमीन पर खनन करने की अनुमति थी; मगर वह लीज की जमीनों को कम आदिवासियों की जमीनों को ज्यादा खोदते थे। लीज की शर्तों को दरकिनार करते हुए तथा बाक्साइट जमीन से निकाले जाने के पश्चात गड्ढे बिना भरे छोड़ देते। जिसके कारण पीने के पानी दूषित हो गए तथा सेरेब्रल मलेरिया जैसी खतरनाक बीमारी आदिवासियों में फैलने लगी। जिससे तंग आकर खनन क्षेत्रों को बंद करने को लेकर आदिवासियों ने जुलूस निकाल दिया। 'एतवारी' और 'बुधनी दी' इस जुलूस का मोर्चा संभालते हुए आगे बढ़ती जा रही थीं।

उपन्यास 'मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ' विस्थापन, प्रदूषण एवं रेडियोऐक्टिव तत्व से होने वाले दुष्प्रभाव के कारण आदिवासी समाज किस कदर विनष्ट होने की कगार पर है, इसको गहराई से अभिव्यक्त करता है। उपन्यास में यूरेनियम की खदान से निकलने वाले कचरे के दुष्प्रभाव को दिखाया गया है। कंपनी वाले खदान से निकले कचरे को आदिवासियों के निवास स्थानों के आसपास डाल कर खुला छोड़ देते हैं। जिनसे आदिवासी स्त्रियाँ और उनके बच्चे अधिक प्रभावित होते हैं। स्त्रियों पर उस विकिरण का इतना अधिक प्रभाव होता है कि उनकी स्वयं की और उनके आने वाले बच्चे मानसिक या शारीरिक रूप से विकलांग पैदा होते हैं। इन सबका जीवंत प्रमाण आदित्यश्री अपने कैमरे से वीडियो लेते समय दिखाता है- "जिन्हें बार-बार गर्भपात होता, उनसे भी ज्यादा वे औरतें दुखी दिखतीं जिनके बच्चे जन्म लेने के चौबीस घंटे, तीन दिन या सात दिन तक जिंदा रहने के बाद मर जाया करते थे। शारीरिक विकृतियों के साथ जन्मे बच्चों की माताओं का दर्द तो उनसे भी ज्यादा चुभा कैमरे के साथ-साथ फ़िल्मकार की आंखो में! बच्चा ना होने की वजह से छोड़ दी गई मरंग गोड़ा की उन लड़कियों ने भी एक महिला डॉक्टर को अपनी पीड़ा बताई जो मरंग गोड़ा से बाहर ब्याही गयी थीं।..."[14]

इस प्रकार मरंग में निवास कर रहे आदिवासी विस्थापन एवं पलायन के लिए मजबूर हो गये। उनकी जमीनें छीनकर उन्हें मामूली मुआवजा देकर जीवन भर के लिए निराश्रित एवं बेरोजगार कर दिया जाता। यही नहीं जो आदिवासी वहाँ मजबूरन रुकते, उन्हें अपनी जिंदगी एवं स्वास्थ्य से समझौता महंगा पड़ गया। उनके बच्चे कचरे के डैम पर खेलते-खेलते भयंकर रोग के शिकार बनने लगे। यह सब कुछ देखते हुए गाँव के लोग अंदर से छटपटा उठते और साथ ही खुद को असहाय भी महसूस करते। "मसलन, लौह अयस्क वाले परित्यक्त पत्थरों के ढेर पर लावारिसों की तरह भूखे प्यासे भटकते मज़दूरों के बच्चों को देख 'चारिबा' का करुणा से भर उठना और यह कहना- काश! मैं इनके लिए कुछ कर पाती!.."[15] 'चारिबा' अपने घर में माँ-बाप की इकलौती संतान है। उसे अपने परिवार की आजीविका के लिए उसी अयस्क वाली खदान में मजदूरी करने जाना पड़ता है। उसके जैसी लगभग सारी आदिवासी स्त्रियाँ खदान में काम करती हैं। कॉर्पोरेट कम्पनियों की खदानों में काम करने वाली इन स्त्रियों से बदसलूकी की जाती। जिससे इन सारी परेशानियों से त्रस्त होकर इन खदानों को बंद करने का आंदोलन शुरू किया गया- "मांझी हड़म और परगनाओं के कहने पर जेल भरो आंदोलन शुरू कर दिया गाँव वालों ने। कंपनी का काम रोकने के लिए, उनकी गाड़ियों की आवाजाही बंद करने के लिए मवेशियों के साथ पाँच-पाँच महिला पुरुष सड़क पर लेट जाते। जैसे ही पुलिस उन्हें गिरफ्तार करती, पाँच और महिला पुरुष आकर उनकी जगह ले लेते। इस प्रकार रोज करीब पचास साठ ग्रामीण स्वेच्छा से गिरफ़्तारी देने लगे। आसपास के सभी गाँव के लोग गिरफ़्तारी देने को तैयार थे।"[16]

यह आंदोलन सिर्फ खुद के अस्तित्व को बचाने का आंदोलन नहीं था बल्कि उनके एकमात्र घर पर्यावरण को बचाने का भी सवाल था। सगेन कंपनी के खिलाफ आंदोलन के लिए अपने लोगों को इस तरह समझाता है- "जब आप लोगों के संताली समाज में जाहेर थान (पूजा स्थल) पर स्थित एक

भी पेड़ काटे जाने पर सजा देने का प्रावधान है तब खदान कंपनी द्वारा खदान, मिल या डैम बनाने के लिए जो सैकड़ों पेड़ काटे गए हैं या काटे जा रहे हैं, उसकी क्या सजा होनी चाहिए? और फिर इस जगह टेलिंग डैम बनेगा तो सिर्फ कुछ घर और खेत ही नहीं बल्कि आप लोगों का पूजा स्थल जाहेर थान भी तो डूब जाएगा?.."[17] उसके पश्चात आंदोलन को काफी जोर मिलता है और जमकर गिरफ्तारियाँ देते हुए भी यह लोग नहीं हिचकते हैं। आंदोलन में महिलाओं की उपस्थिति प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों तरह से मजबूती से होती है। सगेन के विस्थापन विरोधी दल के सचिव की पत्नी इन पीड़ित औरतों का नेतृत्व करती है। इन स्त्रियों ने पुलिसिया दमन की परवाह न करते हुए पुरुषों के कंधे से कंधा मिलाकर जगह जगह प्रदर्शन करना शुरु कर दिया। पुनर्वास और रोजगार की मांग करते हुए कंपनी के मुख्य गेट को घेरकर लुरमडीह, काटिन, तरवा, सतजनता आदि खदानों से कच्चा माल लेकर आने वाली गाड़ियों को मिल में घुसने से रोका जाने लगा। आंदोलन करते हुए स्त्री और पुरुषों का यह नज़ारा देखते बनता- "लाल पाड़ वाली सफेद साड़ी में औरतें। पीले रंग का साफा बांधे पुरुष। औरतों के हाथ में बेलन, झाड़ू कलछुल, कटारी जैसे घरेलू अस्त्र! पुरुषों के हाथ में तीर धनुष, लाठी, डंडा! ढोल, नगाड़ा, माँदर भी! वे उन्हें बजा रहे हैं...नाच रहे हैं...नारे लगा रहे हैं...

- "जल जंगल जमीन हमारा है..."

- "हमें हमारा घर, वापस करो..."

- "इंकलाब जिन्दाबाद..."[18]

कुछ महिलाएं इन आन्दोलनरत साथियों की मदद एकदम निस्वार्थ भाव से कर रही थीं। "पत्ता तोड़ने या लकड़ी काटने के बहाने स्थानीय संथाल महिलाएं उन्हें खाना पहुंचा जाती थीं। मरंग गोड़ा से उनकी राय, उनका निर्देश लेने के लिए, पश्चिमी सिंहभूम तथा अन्य इलाकों से उनके सहयोग के लिए आने वाले आंदोलनकारियों, भरोसेमंद प्रेसवालों को रास्ता दिखाकर उन तक लेकर आती थीं वे। रात को वन गाँव स्थित किसी झोपड़ी में सोने की व्यवस्था भी कर देती थीं।"[19]

'अल्पना मिश्र' कृत 'अस्थि फूल' वर्तमान का ज्वलंत विषय पर्यावरण एवं स्त्री दोनों के संदर्भ में लिखा गया महत्वपूर्ण उपन्यास है। इसमें झारखंड की सामाजिक-राजनीतिक के साथ जंगल, जमीन तथा स्त्रियों की पीड़ा को काफी नजदीक एवं गहराई से अभिव्यक्त किया गया है। यहाँ दिखाया गया है कि जिस प्रकार पृथ्वी के गर्भ से बिना हिचके इस पूंजीवादी व्यवस्था द्वारा खनिजों को खोदकर निकाला जा रहा है उसी तरह स्त्रियों को भी इस पितृसत्तात्मक समाज में एक वस्तु की तरह उसके एवं उसके गर्भ का इस्तेमाल किया जा रहा है। जिस तरह स्त्री लड़ती हुई इस व्यवस्था को बदलती एवं स्वयं के अनुकूल करती हुई आ रही है उसी तरह आज पृथ्वी भी स्वयं के शोषण को अब बिल्कुल बर्दाश्त नहीं करेगी। **"पृथ्वी माफ करती रही मनुष्य को उसकी अधम नीचताओं के लिए...लेकिन अब नहीं, सृष्टि के विनाश में- सृष्टि के सृजन की थकान और पीड़ा अत्याचारों से दब गई है...अब नहीं!"**[20]

आज पूंजी और पितृसत्ता समाज दोनों मिलकर शोषण का ऐसा वातावरण तैयार कर रहे हैं, जिनमें आज भी स्त्री उपभोग की वस्तु बनकर रह गई है। प्रकृति भी स्त्री ही है, जिसमें स्त्री की तरह अपार धैर्य, करुणा एवं संवेदना है, मगर वह भी आज सिर्फ साधन के रूप में प्रयुक्त की जा रही है। उपन्यास में आधुनिक युग में शहरीकरण जैसी व्यवस्था को भी कटघरे में खड़ा किया गया है। जहाँ स्त्री एक कैदी हो चुकी है। **"हाँ री संतोष, जंगल में जानवरों से डर लगता है, शहर में आदमियों से। यहाँ आदमी औरत को मानुष नहीं समझते। जब तक औरत अपनी जमीन पर है, अपने जंगल के साथ है, तब तक मानुष है, तब तक लड़ने की ताकत है उसमें, लेकिन वही औरत शहर में आकर सिर्फ जिस्म बन कर रह जाती है... औरत जंगल में अपनी लड़ाई के लिए खड़ी हो जाती है...हम तीर धनुष उठा लेते हैं, भाला और दांव चला लेते हैं, लेकिन शहर? शहर हमारी कब्रगाह है...इतनी मजबूत है यहाँ की कैद कि इसमें से निकलना मुश्किल है। कैसे निकलें? जूझते-जूझते ही खत्म हो जाते हैं।"**[21]

शहर ऐसा मकड़जाल है, जहाँ स्त्रियों को कैद कर उन्हें उपभोग की वस्तु में बदल दिया जाता है। झारखंड, उड़ीसा, छतीसगढ़ और नेपाल से खरीद के ले आईं तमाम उन स्त्रियों को शहर के पुरुष ऐसे व्यवहृत करते, जैसे वे मांस का एक लोथ हों और उनसे मनचाहा काम लो और नोचो, खसोटो। अल्पना मिश्र के यहाँ औरतें छटपटा रही हैं उस शहर रूप कैद से निकल कर भागने को, तो संध्या और उसकी बहन जैसी वे तमाम स्त्रियाँ हैं जो स्वयं के अधिकार के लिए तो लड़ ही रही हैं, साथ ही पलाश और ईनारा जैसी उन तमाम मासूम स्त्रियों को बचाने का प्रयत्न भी कर रही हैं, जिन्हें मजबूरन वेश्यावृत्ति में धकेल दिया गया था-

"जंगल में औरतें शेर होती हैं- शेर, मगर शहर में आते ही सहम जाती हैं।

शहर उनके मनुष्य को चीन्हता तक नहीं।

उन्हें देह में बदल कर रख देता है।"22

'सामा चकवा' उपन्यास 'गीताश्री' द्वारा स्त्री और प्रकृति से जोड़कर लिखा गया उपन्यास है। मिथक, लोक संस्कृति एवं अभिजन संस्कृति और पर्यावरण से जोड़कर लेखिका ने इस उपन्यास को वर्तमान का मुद्दा बना दिया है। सामा कृष्ण और जाम्बवती की पुत्री थीं, जिन्होंने अपने प्रेम के लिए चकवा पक्षी बनकर जो कीमत चुकाई उसके लिए उन्हें मानवीय प्रेम के आदर्श के रूप में ही नहीं बल्कि प्रकृति प्रेमी के रूप में भी याद किया जाता रहेगा। उनका प्रेम ऐसा प्रेम था जहाँ केवल उनके व्यक्तिगत आचार, व्यवहार और आपसी भलमनसाहत की चिंता नहीं, बल्कि समाज की, प्रकृति की

कुशलता की चिंता मौजूद रहती है। यह सामा और उसके प्रेमी चारुवक्त्र की मिलिजुली चिंता हो गई, जिसमें दोनों का उद्देश्य एक ही बन जाता है। सामा प्रेम के क्षण में भी अपने पर्यावरण की समस्या को उजागर करते हुए चारुवक्त्र से चिंता जाहिर करती है- **"किसी दिन यमुना में पानी कम हो गया तो? जंगल के सारे वृक्ष लकड़हारे काट ले गये तो...सूखा पड़ा तो, वर्षा न हुई तो...नगर कहीं जंगल के भीतर बनने लगे तो कहाँ जाएंगे ये वनवासी...कौन लड़ेगा इनके लिए...तब न जाने हम दोनों कहाँ होंगे...क्या ऐसा संभव नहीं कि हम दोनों सदा इसके रक्षक बन कर रहें...ऐसा वरदान पाने के लिए क्या तपस्या करनी पड़ेगी... ।"23**

इस प्रकार सामा केवल स्त्री अधिकारों को लेकर चेतनशील नहीं है अपितु वह उतनी ही पर्यावरण को लेकर भी सजग नागरिक है, और यह चेतना जन्म से ही उसकी माँ जाम्बवती से मिली है। मिथक कथाओं के हवाले से उसकी माँ एक वनवासी स्त्री थीं और जामवंत की पुत्री थीं, जो गुफा में रहते हुए जीवन व्यतीत करते थे। कृष्ण ने जाम्बवती को उनके पिता से युद्ध में जीत के परिणाम स्वरूप वरण किया था। ऐसा इसलिए कि त्रेता युग में जामवंत राम के सेनापति थे और बिना युद्ध में सक्रिय भागीदारी के विजय के भागीदार बनने से उनमें अभिमान का संचार हो गया था। इसीलिए राम ने उनकी इच्छा पूर्ति एवं अभिमान के खात्मे के लिए द्वापर युग में कृष्ण के रूप में आकर युद्ध करने का आश्वासन दिया था। युद्ध में कृष्ण द्वारा पराजित होने पर आत्मसमर्पण के तौर पर भेंट स्वरूप में उन्होंने अपनी पुत्री जाम्बवती का विवाह श्रीकृष्ण से करवा दिया था विवाह के बाद जंगल का जीवन छोड़कर महलों का जीवन जाम्बवती को कभी रास न आया- **"श्रीकृष्ण ने सदा महसूस किया कि वह कभी महल में रम नहीं पाईं। उनके नेत्र जाने क्या ढूँढते रहते थे। उनके लिए महल के आसपास खूब बाग-बगीचे लगाए गए, जहाँ भाँति-भाँति की चिड़ियाँ आती थीं। वह उनमें रम जाती थीं। वे उनके प्रकृति प्रेम को समझते थे। और यह भी समझते थे कि किसी वनवासी इंसान के लिए स्थान परिवर्तन बहुत त्रासद होता है।"24**

उपन्यास में सामा का चारुवक्त्र से प्रेम प्रसंग के कारण लोगों में उठे अफवाहों के आधार पर श्रीकृष्ण ने अपने कुल के चरित्र हनन के भय से, सामा का पक्ष जाने बगैर उसे चकवा पक्षी हो जाने का श्राप दे दिया था। सामा के चकवा बन जाने के बाद मुक्ति के लिए जिस तरह से संघर्ष और प्रयास किए जाते हैं, उनमें पर्यावरण की मुक्ति भी शामिल रहती है। वह मनुष्य शरीर में ही नहीं बल्कि पक्षी रोप में भी जंगल को कटने से बचाने हेतु सारे पक्षियों को एकत्र कर पेड़ काटने वाले लकड़हारों के विरोध में समर्थन हासिल किया और उस योजना को इस तरह अंजाम दिया- **"श्रमिकों ने अपने स्वामी के आदेश पर जैसे ही कुल्हाड़ी उठाई, पूरा जंगल जैसे कांपने लगा। सारे वृक्ष शोर से भर गये। पूरा आकाश स्याह होने लगा। ऊपर कौवे काँव-काँव करके शोर मचा रहे थे। सामा ने तेज़ आवाज़ निकाली और फिर आक्रमण शुरु हो गया। वनवासियों के प्रति सबकी सहानुभूति थी, किन्तु इस समय वे वृक्षों का काल बन कर आए थे, उनके हाथों पर परिंदों ने चोंच मारा। कुल्हाड़ी सबके हाथों से छूट कर नीचे गिर गई। सारे वनवासी श्रमिक उल्टे पाँव भाग खड़े हुए। वे भागते हुए चिल्लाने लगे- भागों...वन देवता क्रोधित हो गये हैं... । हमें क्षमा कर दो देव...हम विवश थे...हम शर्मिंदा हैं देवता...हम अपने ही जीवन आधार को काटने चले थे..."25**

इस कृत्य से वनवासियों के अंदर स्वयं के अस्तित्व और जंगल को बचाने के लिए चेतना आ जाती है। इस प्रकार सामा का पक्षी बनकर भी चेतनशीलता को बनाए रखना और दूसरों को अपने परिवेश के प्रति संवेदनशील और जाग्रत बनाते चलना उसकी चारित्रिक सशक्तता को दर्शाता है। वह जंगल में रह रहे वनवासी और नगर में रह रहे मनुष्यों के प्राकृतिक उपभोग की तुलना करती है- **"जंगल में रहने वाले वनवासी जिन वस्तुओं का उपभोग करते हैं, उन्हें स्वयं उगाते या बनाते हैं। वे नगर पर निर्भर नहीं रहते। नगरीय सभ्यता सिर्फ दूसरों की उगायी, बनाई वस्तुओं का उपभोग करना जानती है।"26**

उपन्यास में चूड़क श्रीकृष्ण के सामंत के रूप में नगरीय सभ्यता का प्रतीक माना जाता है जो जंगलों को मनमाने तरीके से काटकर उजाड़ कर रख देता है और उनका असीमित उपभोग करता है और सामा, चारुवक्त्र जैसे पात्र उसके संरक्षक के रूप में आते हैं और जरूरत पड़ने पर पेड़ों को बचाने के लिए चिपको आंदोलन जैसा तरीका भी अपनाते हैं, जहाँ वृक्षों को बचाने के लिए सामा और उसकी सखियाँ आदि पेड़ से लिपट जाती हैं।

इस प्रकार इन उपन्यासों में स्त्री केवल पीड़ित और शोषित ही नहीं है अपितु वह अपनी और पर्यावरण की समस्याओं और उसके कारक पक्षों से संघर्ष करते हुए दिखती है। यह सिर्फ एक क्षेत्र या देश की समस्या नहीं है बल्कि पूरे विश्व की स्त्रियों की समस्याएं हैं। प्रकृति के साथ-साथ प्रत्येक स्त्री का अस्तित्व महत्वपूर्ण है। यदि पृथ्वी पर स्त्री एवं प्रकृति दोनों अपने को सुरक्षित महसूस नहीं कर रहे हैं तो हम उनके बगैर कैसे सुरक्षित हो सकते हैं? इस प्रकार पितृसत्ता, राज्यसत्ता और पूंजी की आपसी गठजोड़ ने वर्तमान में पर्यावरण और स्त्री के लिए जो शोषण की जमीन तैयार की है, वह आज भी जारी है तथा स्त्री और प्रकृति दोनों उस शोषण, अन्याय, अत्याचार और वर्चस्व की भावना के विरुद्ध समान रूप से संघर्ष करते हुए दिखाई देते हैं। साथ ही ये उपन्यास आधुनिक सभ्यता की विकास यात्रा को चिह्नित करते हुए उन पर एक बड़ा प्रश्नचिन्ह लगाते हैं।

संदर्भ:

1. पृ. संख्या – 5, हिंदी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, आठवाँ संस्करण, 2012
2. पृ. संख्या – 12, ईको फेमिनिज्म, के वनजा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2013
3. पृ. संख्या – 53, दि सेकेंड सेक्स (स्त्री: उपेक्षिता), सिमोन द बोउवार (अनुवाद- प्रभा खेतान), हिंदी पॉकेट बुक्स, 2004
4. पृ. संख्या – 55, वही
5. पृ. संख्या – 12, ईको फेमिनिज्म, के वनजा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2013
6. पृ. संख्या – 51, तृन धरि ओट, अनामिका, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2023
7. पृ. संख्या – 137, वही
8. पृ. संख्या – 144, अस्थि फूल, राजकमल पेपरबैक्स, नई दिल्ली, 2019
9. पृ. संख्या – 55, दि सेकेंड सेक्स (स्त्री: उपेक्षिता), सिमोन द बोउवार (अनुवाद- प्रभा खेतान), हिंदी पॉकेट बुक्स, 2004
10. पृ. संख्या – 225-226, स्त्री संघर्ष का इतिहास, राधा कुमार, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पेपरबैक संस्करण, 2022
11. पृ. सं.-9, रणेन्द्र, ग्लोबल गाँव के देवता, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2019,
12. पृ. सं.-19, वही
13. पृ. सं.-72, वही
14. पृ. सं.-182, मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ, महुआ माजी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015
15. पृ. सं.-176, वही
16. पृ. सं.-172, वही
17. पृ. सं.-166, वही
18. पृ. सं.-169, वही
19. पृ. सं.-172, वही
20. पृ. सं.- 179, अस्थि फूल, अल्पना मिश्र, राजकमल पेपरबैक्स, नई दिल्ली, 2019
21. पृ. सं.-175, वही
22. पृ. सं.- 158, वही
23. पृष्ठ संख्या- 71, सामा चकवा, गीताश्री, राजपाल एण्ड संस, दिल्ली, 2024,
24. पृष्ठ संख्या- 18, वही
25. पृष्ठ संख्या- 153, वही
26. पृष्ठ संख्या-155, वही

1.